

[2019] 8 एस. सी. आर. 266

मु. मन्नान उर्फ अब्दुल मन्नान

बनाम्

बिहार राज्य

पुनरीक्षण याचिका (आपराधिक) सं. 308/2011

अन्तर्गत

आपराधिक अपील सं. 379/2009

14 फरवरी, 2019

[एन. वी. रमना और मोहन एम. शांतानागौदर और इंदिरा बनर्जी, न्यायमूर्तिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973: की धारा 235 (2)-सजा के सवाल पर सुनवाई-मौत की सजा-एक दोषी का अधिकार-अभिनिर्धारित एक दोषी को अभिलेख पर लाने का अवसर दिया जाना चाहिए सजा को कम करने के लिए परिस्थितियों को कम करना और उकसाने और कम करने के बीच संतुलन बनाना चाहिए। परिस्थिति-तत्काल मामले में, याचिकाकर्ता को सक्षम कानूनी सहायता का लाभ नहीं मिला-निचली अदालत ने भी मौत की सजा के अधिरोपण से संबंधित सामग्री प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया-कोई हलफनामा नहीं मांगा गया - चाहे कोई कम करने वाली परिस्थितियाँ थीं, उन्हें विचारण न्यायालय या अपीलीय न्यायालयों द्वारा संबोधित नहीं किया गया था-भले ही एस के तहत सुनवाई। 235 (2) सजा के प्रश्न पर 31.5.2007 को निर्धारित किया गया था, अर्थात्, याचिकाकर्ता के निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश की घोषणा के दो दिन बाद, 29.5.2007 को, याचिकाकर्ता को जेल हिरासत से पेश किए जाने और मौत की सजा दिए जाने के बाद सुनवाई को 29.5.2007 को ही पूर्ववत् कर दिया गया था-धारा 235 (2) के तहत सुनवाई के विचारण

न्यायालय द्वारा पूर्ववतअल्प सूचना पर, जो प्रभावी रूप से कोई सूचना नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता को एक प्रभावी सुनवाई-सुनवाई से वंचित कर दिया गया है।

समीक्षा: आठ साल की लड़की का बलात्कार और हत्या-धाराएँ 376 और तहत दोषसिद्धि। और मौत की सजा-निचली अदालत और उच्च न्यायालय का समवर्ती निष्कर्ष-उसी के खिलाफ विशेष अनुमति याचिका खारिज-समीक्षा याचिका भी खारिज-मोहम्मद आरिफ मामले में संविधान पीठ के फैसले को देखते हुए दायर दूसरी समीक्षा याचिका। आयोजित: लगभग आठ साल पहले दायर की गई पुनर्विचार याचिका को 24.08.2011 को परिसंचरण करके खारिज कर दिया गया था-इसके बाद भी, लगभग तीन साल तक मौत की सजा का निष्पादन नहीं किया गया था-समीक्षा को फिर से खोलने और ओपन कोर्ट में उसी की सुनवाई के लिए तत्काल आवेदन भी चार साल से अधिक समय से लंबित है। आरिफ मामले में, याचिकाकर्ता समीक्षा के लिए आवेदन प्राप्त करने का हकदार है जिसे प्रचलन द्वारा खारिज कर दिया गया था, फिर से खोला गया और खुली अदालत में सुना गया।

सजा/सजा:मृत्युदंड- परिवर्तन के लिए प्रार्थना-आठ साल की लड़की का बलात्कार और हत्या-भा.दं.सं. की धारा 376 और 302 के तहत दोषसिद्धि। और मृत्युदंड-निचली अदालत और उच्च न्यायालय का समवर्ती निष्कर्ष-उसी के खिलाफ विशेष अनुमति याचिका खारिज-समीक्षा याचिका-सजा को कम करने के सवाल तक सीमित समीक्षा-अभिनिर्धारित:दुर्लभतम मामलों में मृत्युदंड दिया जाता है, जिसके लिए विशेष कारणों को दर्ज करना पड़ता है, जैसा कि आप.दं.सं. की धारा 354(3) में अनिवार्य है। यह तय करने में कि क्या कोई मामला दुर्लभ से दुर्लभतम की श्रेणी में आता है, क्रूरता, और/या अपराध की वीभत्स और/या जघन्य प्रकृति एकमात्र मानदंड नहीं है-न्यायालय को उसके मन की स्थिति, उसकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि आदि पर भी विचार करना है-इसलिए, मृत्युदंड की चरम सजा देने से पहले, न्यायालय को खुद को संतुष्ट करना होगा कि मृत्युदंड अनिवार्य है, अन्यथा दोषी समाज के लिए खतरा होगा-न्यायालय को आगे बढ़ना होगा। स्वयं को संतुष्ट करें कि दोषी

के सुधार या पुनर्वास की कोई संभावना नहीं है-इस मामले में, एक आठ वर्षीय निर्दोष लड़की याचिकाकर्ता की शारीरिक इच्छा और वासना का शिकार हो गई-दोषसिद्धि परिस्थितिजन्य साक्ष्य और याचिकाकर्ता द्वारा जांच के दौरान पुलिस को दिए गए अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति के आधार पर-यह ज्ञात नहीं था कि क्या इस मामले में कोई पूर्व-चिंतन किया गया था पीड़ित की हत्या करने के लिए याचिकाकर्ता-इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपराध घृणित था, लेकिन यह संदेह है कि क्या याचिकाकर्ता द्वारा किए गए अपराध को "दुर्लभ से दुर्लभतम" कहा जा सकता है-याचिकाकर्ता के पास सभी वर्षों में वस्तुतः एकान्त कारावास में रहे-चिकित्सा साक्ष्य से पता चला कि वह मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं था-निष्पादन के समय याचिकाकर्ता का मानसिक स्वास्थ्य एक प्रासंगिक शमन कारक है जिसे तत्काल मामले में ध्यान में रखा जाना चाहिए - इसलिए, मौत की सजा की पुष्टि करना उचित नहीं है-याचिकाकर्ता पर लगाई गई मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया जाता है कारावास, उनकी प्राकृतिक मृत्यु तक, बिना किसी राहत या छूट के-आपराधिक न्याय प्रशासन-सुनवाई-आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 -धारा 354 (3)-दंड संहिता, 1860-धारा 376 और 303।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973: धारा 235 (2)- धारा 235 (2) के तहत प्रभावी सुनवाई के लिए, यह सुझाव कि अदालत मृत्युदंड लगाने का इरादा रखती है, विशेष रूप से आरोपी को दिया जाना चाहिए, ताकि आरोपी को सक्षम बनाया जा सके । न्यायालय दंड संहिता, 1860 धारा 376 और 302- सुनवाई के समक्ष कम करने वाली परिस्थितियों को रखकर, मौत की सजा के खिलाफ प्रभावी प्रतिनिधित्व- सुनवाई।

आपराधिक न्याय का प्रशासन:दोषी के लिए कानूनी सहायता अधिनिर्धारित: सजा के सवाल पर सुनवाई के चरण सहित हर स्तर पर दोषी को प्रदान की जाने वाली कानूनी सहायता प्रभावी होनी चाहिए और भले ही आरोपी चुप रहा हो, अदालत संबंधित कारकों को उजागर करने के लिए बाध्य और कर्तव्यबद्ध होगी-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

जेल: यह दुनिया भर में अच्छी तरह से माना जाता है कि जेलों में प्रचलित कठिन परिस्थितियों, जैसे कि मजबूर एकांत, अपर्याप्त स्वास्थ्य देखभाल, आजीविका की हानि आदि के कारण, कैदियों को अक्सर जेल में प्रवेश के बाद मानसिक बीमारी हो जाती है-संबंधित जेल नियम भी जेल में भर्ती होने के बाद की घटना को पहचानते हैं। मानसिक बीमारी को दोषी ठहराना और यह बताना कि ऐसे व्यक्तियों की फांसी को सरकार के आदेश-आपराधिक न्याय प्रशासन के लंबित रहने तक स्थगित कर दिया जाएगा।

आरिफ बनाम उच्चतम न्यायालय के निबंधक (2014) 9 एससीसी 737: [2014] 11 एससीआर 1009; बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (1980) 2 एससीसी 684; राजेश कुमार बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली सरकार के माध्यम से)। (2011) 13 एस. सी. सी. 706; सांता सिंह बनाम पंजाब राज्य (1976) 4 एस. सी. सी. 190:[1977] 1 एस. सी. आर. 229; दगडू और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (1977) 3 एस. सी. सी. 68:[1977] 3 एससीआर 636; मच्छी सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य (1983) 3 एससीसी 470:[1983] 3 एससीआर 413; संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2009) 6 एससीसी 498:[2009] 9 एससीआर 90; अजय पंडित और एक अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2012) 8 एससीसी 43:[2012] 10 एस. सी. आर. 70; मोहिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2013) 3 एस. सी. सी. 294:[2013] 3 एससीआर 90; पंछी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1998) 7 एस. सी. सी. 177:[1998] 1 पूरक। एस. सी. आर. 40; मुकेश और एक अन्य बनाम राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली) और अन्य (2017) 3 एस. सी. सी. 717; हारू घोष बनाम डब्ल्यू. बी. राज्य। (2009) 15 एससीसी 551:[2009] (13) एस. सी. आर. 847; लेहना बनाम हरियाणा राज्य (2002) 3 एस. सी. सी. 76:[2002] 1 एससीआर 377; शत्रुघ्न चौहान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य। (2014) 3 एससीसी 1:.[2014] 1 एससीआर 609; सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य। (1978) 4

एससीसी 494:[1979] 1 एससीआर 392; बिरजू बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2014) 3 एससीसी 421:[2014] 1 एससीआर 1047; रमेश और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2011) 3 एस. सी. सी. 685:[2011] 4 एससीआर 585; राम देव प्रसाद बनाम बिहार राज्य (2013) 7 एससीसी 725:[2013] 6 एससीआर 108; सुशील शर्मा बनाम राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली) (2014) 4 एस. सी. सी. 317:[2013] 16 एससीआर 616; स्वामी श्रद्धानंद (2) @मुरली मनोहर मिश्रा बनाम कर्नाटक राज्य (2008) 13 एससीसी 767:[2008] 11 एससीआर 93; सेबस्टियन @ चेविथियान बनाम केरल राज्य (2010) 1 एस. सी. सी. 58; नवनीत कौर बनाम राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली) और एक अन्य (2014) 7 एस. सी. सी. 264; मुल्ला और एक अन्य बनाम यू. पी. राज्य। (2010) 3 एससीसी 508: [2010] 2 एस. सी. आर. 633 -पर निर्भर था।

मामला कानून संदर्भ

[2014] 11 एससीआर 1009 पैरा 13 पर निर्भर
 (1980) 2 एससीसी 684 पैरा 16 पर निर्भर
 (2011) 13 एससीसी 706 उस पर भरोसा करें पैरा 17
 [1977] 1 एससीआर 229 उस पर भरोसा करें पैरा 20
 [1977] 3 एससीआर 636 उस पर भरोसा करें पैरा 22
 [1983] 3 एससीआर 413 उस पर भरोसा करें पैरा 23
 [2009] 9 एससीआर 90 उस पर भरोसा करें पैरा 24
 [2012] 10 एससीआर 70 उस पर भरोसा करें पैरा 25
 [2013] 3 एससीआर 90 उस पर भरोसा करें पैरा 26
 [1998] 1 पूरक। एस. सी. आर. 40 पर निर्भर पैरा 27

(2017) 3 एससीसी 717 उस पर भरोसा करें पैरा 28

[2009] 13 एससीआर 847 उस पर भरोसा करें पैरा 29

[2002] 1 एससीआर 377 उस पर भरोसा करें पैरा 31

[2014] 1 एससीआर 609 उस पर भरोसा करें पैरा 34

[1979] 1 एससीआर 392 उस पर भरोसा करें पैरा 35

[2014] 1 एससीआर 1047 उस पर भरोसा करें पैरा 37

[2011] 4 एससीआर 585 उस पर भरोसा करें पैरा 57

[2013] 6 एससीआर 108 उस पर भरोसा करें पैरा 58

[2013] 16 एससीआर 616 उस पर भरोसा करें पैरा 60

[2008] 11 एससीआर 93 उस पर भरोसा करें पैरा 62

(2010) 1 एससीसी 58 उस पर भरोसा करें पैरा 63

(2014) 7 एससीसी 264 उस पर भरोसा करें पैरा 73

[2010] 2 एससीआर 633 उस पर भरोसा करें पैरा 88

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2009 की आपराधिक अपील संख्या 379 में 2011 की समीक्षा याचिका (आपराधिक) संख्या- 308/2011

2009 की आपराधिक अपील संख्या 379 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 20.04.2011 से 2011 की पुनरीक्षण याचिका (आपराधिक) संख्या 308

सुश्री नित्या रामकृष्णन, शादन फरासत, यश एस. विजय, निन्नी सुसान थॉमस, सादूजमान, सुश्री सुश्री नारायण, सुश्री जाहनवी सिंधु, अधिवक्ता - याचिकाकर्ता के लिए।

देवाशीष भरुका, रवि भरुका, सुश्री सर्वश्री, जस्टिन जॉर्ज, आदित्य सिंगला, मनु राजवंशी, एम. शोएब आलम, अधिवक्ता - उत्तरदाता के लिए।

न्यायालय का निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था:

आदेश

यह आवेदन 2011 की समीक्षा याचिका (आपराधिक) संख्या 308 को फिर से खोलने और पुनर्विचार याचिकाकर्ता द्वारा दायर 2009 की आपराधिक अपील संख्या 379 को खारिज करने और भारतीय दंड संहिता (भा0 वं0 सं0) की धारा 201, 366 ए, 376 और 302 के तहत अपनी दोषसिद्धि की पुष्टि करने और अन्य बातों के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत उस पर लगाए गए मौत की सजा की पुष्टि करने के लिए इस न्यायालय द्वारा पारित अंतिम निर्णय और आदेश की समीक्षा के लिए है।

2. ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता, एक राजमिस्त्री, मृतक के दादा के निवास पर कार्यरत था। 28 सितंबर 2004 को लगभग दोपहर 2 बजे, याचिकाकर्ता ने पीड़ित को हनुमान चौक से पान लाने के लिए पैसे दिए। थोड़ी देर बाद याचिकाकर्ता भी हनुमान चौक पर जाकर अपनी साइकिल से आठ साल की बच्ची को उठाया और उसके साथ बात करते हुए चला गया। पीड़िता और याचिकाकर्ता को गवाहों द्वारा एक साथ देखा गया।

3. पीड़ित घर नहीं लौटी, जिसके बाद उसकी काफी तलाश की गई। पीड़िता का पता नहीं चला। यह पता चला कि पीड़िता को आखिरी बार याचिकाकर्ता के साथ देखा गया था।

4. बहेरा थाना, जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ता का ग्राम आता है, के प्रभारी अधिकारी को सूचित किया गया कि पीड़िता लापता है। जांच के दौरान याचिकाकर्ता, जिसकी पहचान पहले उस व्यक्ति के रूप में की गई थी जिसके साथ पीड़ित को अंतिम बार देखा गया था, ने गवाहों की उपस्थिति में कथित रूप से एक इकबालिया बयान दिया, जिसमें स्वीकार किया गया कि उसने पीड़िता के साथ बलात्कार और हत्या की थी।

5. संस्वीकृति वक्तव्य पर याचिकाकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे। याचिकाकर्ता पर आरोप है कि उसने उस स्थान का खुलासा किया था जहां उसने पीड़िता का बलात्कार किया और उसकी हत्या की थी। यह अभियोजन का मामला है, कि याचिकाकर्ता द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर, जांच अधिकारी ग्राम इज़ार हाट बंद गए, जहां पीड़ित का शव गेहूं और 'अड़हर' खेतों के बीच, याचिकाकर्ता द्वारा दिखाए गए स्थान से बरामद किया गया था।

6. मृत शरीर की पहचान पीड़ित के रूप में की गई थी। पोस्टमॉर्टम करने वाले डॉक्टर ने कहा कि पोस्टमॉर्टम के समय से 8 से 24 घंटे के भीतर गला घोटने के परिणामस्वरूप दम घुटने और रक्तस्राव के कारण मौत हुई। डॉक्टर ने यह भी कहा कि जांच के बाद पीड़िता के योनि स्वेब से कुछ स्पर्मटोजोआ मिले हैं। चिकित्सा साक्ष्य से स्पष्ट रूप से स्थापित हो गया कि पीड़िता के साथ बलात्कार किया गया था और उसकी हत्या कर दी गई थी। हालांकि अभियोजन पक्ष द्वारा शुक्राणुओं का डीएनए विश्लेषण नहीं किया गया था।

7. 2004 की जीआर संख्या 325/2004 से उत्पन्न सेशन ट्रायल नं. 220/2004 में दिए गए एक निर्णय और आदेश द्वारा, अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश (त्वरित न्यायालय) नं. 30 ने, अभिलेख के साक्ष्य पर विचार करने पर, याचिकाकर्ता को भा0 व0 सं0 की धारा 366 ए, 376, 302 और 201 के तहत आरोपों का दोषी ठहराया।

8. विद्वत अपर जिला और सत्र न्यायाधीश, त्वरित त्वरित न्यायालय ने निर्देश दिया कि मामले की कार्यवाहियां मृत्युदंड की पुष्टि के लिए पटना के उच्च न्यायालय को पारेषित की जाएं। याचिकाकर्ता ने अपनी दोषसिद्धि और सजा के खिलाफ उच्च न्यायालय में 2007 की आपराधिक अपील (डीबी) संख्या 963 के रूप में एक अपील दायर की।

9. 2007 की मृत्यु निर्देश संख्या 6 को उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा 2007 की आपराधिक अपील (डीबी) संख्या 963 के साथ सुना गया था। खंडपीठ, अभिलेख पर सामग्री पर विचार करने के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंची कि याचिकाकर्ता के खिलाफ धारा

३६६ ए, ३७६, ३०२ और २०१ के तहत आरोप संदेह से परे साबित हुए थे और दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया था। अपील खारिज कर दी गई और निचली अदालत द्वारा याचिकाकर्ता को दी गई मौत की सजा की पुष्टि की गई।

10. याचिकाकर्ता ने उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश के खिलाफ अपील करने के लिए इस न्यायालय में एक विशेष अनुमति याचिका दायर की। अनुमति विधिवत प्रदान की गई।

11. 2009 की दांडिक अपील संख्या 379 को इस न्यायालय द्वारा दिनांक 20.04.2011 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसकी समीक्षा की मांग की गई थी, और मृत्यु दंड की इस टिप्पणी के साथ पुष्टि की गई थी कि मामला दुर्लभ से दुर्लभ मामलों की श्रेणी में आता है।

12. याचिकाकर्ता ने उक्त निर्णय और दिनांक 20.04.2011 के आदेश की समीक्षा के लिए एक याचिका दायर की। उक्त पुनर्विचार याचिका को उसी दो न्यायाधीशों द्वारा 24 अगस्त, 2011 को परिसंचरण द्वारा खारिज कर दिया गया था।

13. रिट याचिका (दांडिक) सं. 77 (मोहम्मद. आरिफ बनाम उच्चतम न्यायालय के रजिस्ट्रार) के एक निर्णय और आदेश दिनांक- 2.09.2014 द्वारा इस न्यायालय की संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड के मामलों में पुनर्विलोकन याचिकाओं पर खुले न्यायालय में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा सुनवाई की जानी चाहिए। संविधान पीठ ने विशेष रूप से उन सभी मामलों में पुनर्विचार याचिकाओं को फिर से खोलने की अनुमति दी, जहां पुनर्विचार याचिकाओं को परिसंचरण द्वारा खारिज कर दिया गया था।

14. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि इस न्यायालय के मोहम्मद आरिफ (उपर) के मामले में निर्णय को ध्यान में रखते हुए। याचिकाकर्ता समीक्षा के लिए आवेदन प्राप्त

करने का हकदार है, जिसे परिसंचरण द्वारा खारिज कर दिया गया था, फिर से खोला गया था और खुले न्यायालय में सुना गया था।

15. पुनर्विलोकन के लिए इस याचिका में हमें मामले के गुण-दोषों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विचारण न्यायालय, उच्च न्यायालय और इस न्यायालय के समवर्ती निष्कर्ष हैं। यह समीक्षा केवल इस प्रश्न तक सीमित है कि क्या मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में बदल दिया जाना चाहिए।

16. **बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य** वाले मामले में यह न्यायालय, जबकि "विशेष कारणों को लेखबद्ध करते हुए, अभिनिर्धारित किए गए मृत्युदंड की विधिमान्यता को कायम रखते हुए, यह अभिनिर्धारित किया कि आजीवन कारावास नियम था और मृत्युदंड एक अपवाद था, जो "विरले मामलों में से विरलतम" मामलों में अधिरोपित किया जाना था। **बचन सिंह** (पूर्वोक्त) में, इस न्यायालय ने प्रभावी रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड की अत्यधिक शास्ति अधिरोपित करने के विवेकाधिकार का प्रयोग करने से पूर्व, गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार करना अपेक्षित है। कुछ कम करने वाले कारक अत्यधिक मानसिक या भावनात्मक अशांति हो सकते हैं जिसमें अपराध किया गया हो, यह संभावना हो सकती है कि अभियुक्त समाज के लिए निरंतर खतरा नहीं होगा, अभियुक्त के सुधार और पुनर्वास की संभावना, मानसिक दोष या अभियुक्त का विकार आदि।

17. **राजेश कुमार बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार के माध्यम से)** में

83. इस न्यायालय ने मत व्यक्त किया:-बचन सिंह में अनुपात को अंतरराष्ट्रीय विधिक समुदाय द्वारा मंजूरी मिल गई है - और डेविड पनिक द्वारा मृत्युदंड के न्यायिक पुनर्विलोकन में इसका बहुत अनुकूल उल्लेख किया गया है:डकवर्थ (पृष्ठ 104-देखें)05) रोजर हुड और कैरोलिन होयल ने मृत्युदंड पर अपने निबंध में बचन

सिंह अनुपात की बहुत सराहना की है (देखें पृष्ठ 285)। विरले मामलों में से विरलतम 'की अवधारणा, जो इस न्यायालय द्वारा बचन सिंह में विकसित की गई है, मृत्युदंड के मामलों में भी अंतरराष्ट्रीय रूप से स्वीकृत मानक है।

84. इस संबंध में ब्रिटिश बैरिस्टर एडवर्ड फिट्जगेराल्ड द्वारा सुझाए गए मृत्युदंड के विवेकाधिकार का प्रयोग करने के अधिकार आधारित दृष्टिकोण के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है। (एडवर्ड फिट्जगेराल्ड:मृत्युदंड सम्मेलन में मृत्युदंड के मामलों को कम करने का अभ्यास (3-5 जून), बारबाडोस:सम्मेलन के कागजात और सिफारिशें]उसमें यह सुझाव दिया गया है कि मृत्युदंड के विरुद्ध कठोर उपधारणा से आरंभ करना मृत्युदंड के मामलों में विवेकाधिकार का प्रयोग करने के प्रति सही दृष्टिकोण है। यह तर्क दिया जाता है कि किसी महत्वपूर्ण शमन कारक की उपस्थिति सबसे भयानक मामलों में भी मृत्युदंड से छूट को न्यायोचित ठहराती है और फिट्जगेराल्ड का तर्क है:

“इस तरह के प्रतिबंधात्मक दृष्टिकोण को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:सामान्य दंड आजीवन कारावास होना चाहिए। मृत्युदंड केवल 'विरले मामलों में से विरलतम' में आजीवन दंडादेश के बदले में अधिरोपित किया जाना चाहिए जहां अपराध या अपराध अपवादात्मक होते हैं और व्यक्ति का कोई महत्वपूर्ण शमन नहीं होता है और सुधार से परे माना जाता है।”

(द डेथ पेनाल्टी, रोजर हुड एंड होयल, चौथा संस्करण, ऑक्सफोर्ड में उद्धृत किया गया है। (पृष्ठ 285)।

86. इन अपीलों के तथ्यों पर समग्र रूप से विचार करते हुए और ऊपर चर्चा किए गए कारणों से, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि अपीलकर्ता को मृत्युदंड नहीं दिया जा सकता क्योंकि बचन सिंह में संविधान पीठ की उक्ति यह है कि 1973 की संहिता

की धारा 354 (3) में विधायी नीति यह है कि हत्या के दोषी व्यक्ति के लिए आजीवन कारावास नियम है और मृत्यु दंडादेश, एक अपवाद है और कम करने वाली परिस्थितियों पर सम्यक विचार किया जाना चाहिए। बचन सिंह ने आगे आदेश दिया कि दंडादेश के प्रश्न पर विचार करने में न्यायालय को मानव जीवन की गरिमा के लिए वास्तविक और स्थायी चिंता दर्शानी चाहिए जो कानून के माध्यम से जीवन लेने के प्रतिरोध को अभिनिर्धारित करे।

दुर्लभ मामलों में से दुर्लभतम मामले को छोड़कर और विशेष कारणों से मौत की सजा को आजीवन कारावास के विकल्प के रूप में नहीं अधिरोपित किया जा सकता।

18. **राजेश कुमार** (उपर्युक्त) में, अभियुक्त को दो असहाय बच्चों के साथ अत्यंत वीभत्स तरीके से मारपीट करने और उनकी हत्या करने का दोषी ठहराया गया था। इस न्यायालय ने यह दोहराते हुए कि आजीवन कारावास नियम है और मृत्यु दंडादेश अपवाद है जो केवल 'विरले मामलों में से विरलतम' में और 'विशेष कारणों' से दिया जा सकता है जब कोई कम करने वाली परिस्थितियां नहीं थीं, अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड नहीं दिया जा सकता।

19. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 को निम्नलिखित रूप में पढ़ा जाता है:-

"235 दोष-मुक्ति या दोष-सिद्धि का निर्णय (1) इसके बाद (ख) बहस और विधि के बिन्दुओं को सुनते हुए (यदि कोई हो) न्यायाधीश मामले में निर्णय देगा।

(2) यदि अभियुक्त दोषसिद्ध किया जाता है तो न्यायाधीश, जब तक वह धारा 360 के उपबंधों के अनुसार आगे नहीं बढ़ता है, दंडादेश के प्रश्न पर अभियुक्त की सुनवाई करेगा और तत्पश्चात् उसे विधि के अनुसार दंडादेश देगा।"

20. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) केवल औपचारिकता नहीं है। विद्वत विचारण न्यायाधीश के लिए यह अनिवार्य है कि वह दंडादेश के प्रश्न पर अभियुक्त को सुने और उससे निपटे।

सांता सिंह बनाम पंजाब राज्य में न्यायमूर्ति, भगवती को उद्धृत करें।

“2.यह प्रावधान स्पष्ट और जाहिर है और इसमें कोई संदेह नहीं है। इसके लिए यह अपेक्षित है कि सेशन न्यायालय के समक्ष प्रत्येक विचारण में पहले अभियुक्त के दोष के बारे में निर्णय होना चाहिए। न्यायालय को प्रथमतः अभियुक्त को दोषी ठहराने या दोषमुक्त करने का निर्णय देना चाहिए। यदि अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया जाता है तो आगे कोई प्रश्न नहीं उठता है। लेकिन अगर वह दोषी पाया जाता है तो अदालत को सजा के सवाल पर आरोपी को सुनना होता है और फिर कानून के अनुसार उसे सजा देनी होती है। जब अभियुक्त को दोषी ठहराते हुए कोई निर्णय सुनाया जाता है, तो उसे उस स्तर पर सजा के संबंध में सुनवाई का अवसर दिया जाता है और यह केवल उसके सुनने के बाद होता है कि उसे यह सुनते हुए कि अदालत सजा सुनाने के लिए आगे बढ़ सकती है।

3. धारा 235 (2) में यह नया उपबंध दंड और दंडात्मक प्रक्रियाओं में आधुनिक प्रवृत्तियों के अनुरूप है। पुरानी संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था। पुरानी संहिता के तहत, सजा के संबंध में आरोपी जो कुछ भी प्रस्तुत करना चाहता था, उसे तर्क समाप्त होने और निर्णय सुनाए जाने से पहले उसके द्वारा बताया जाना था। सजा के संबंध में सुनवाई के लिए कोई अलग मंच नहीं था। अभियुक्त को इस धारणा पर सामग्री प्रस्तुत करनी थी और दंड के संबंध में अपनी प्रस्तुतियां देनी थी कि उसे अंततः दोषी ठहराया जाएगा। यह सबसे अधिक असंतोषजनक था। अतः विधायिका ने निर्णय किया कि केवल अभियुक्त को दोषसिद्ध किए जाने पर ही दंडादेश के प्रश्न

पर विचार किया जाना चाहिए और उस प्रक्रम पर अभियुक्त को दंडादेश के संबंध में सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए। इसके अलावा, यह महसूस किया गया कि दंड देना आपराधिक न्याय के प्रशासन की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण है-उतना ही महत्वपूर्ण जितना कि अपराधी का न्यायनिर्णयन-और इसे सहायक स्थिति में नहीं सौंपा जाना चाहिए मानो यह बहुत अधिक परिणाम का मामला न हो। अपराधी पर समुचित दंड अधिरोपित करना न्यायालय के लिए चिंता का विषय होना चाहिए और इसलिए दंडादेश देने पर न्यायालय को गंभीरता से ध्यान देना चाहिए।

.....इसका कारण यह है कि उचित दंड कई कारकों का मिश्रण है जैसे कि अपराध की प्रकृति, अपराध की परिस्थितियां-अपराधी का पूर्व आपराधिक रिकॉर्ड, अपराधी की उम्र, अपराधी का रोजगार के बारे में रिकॉर्ड, शिक्षा, गृह जीवन, संयम और सामाजिक समायोजन के संदर्भ में अपराधी की पृष्ठभूमि, अपराधी की भावनात्मक और मानसिक स्थिति, अपराधी के पुनर्वास की संभावना, अपराधी के उपचार या प्रशिक्षण की संभावना, यह संभावना कि दंडादेश अपराधी द्वारा या दूसरों द्वारा अपराध के लिए एक निवारक के रूप में कार्य कर सकता है और वर्तमान समुदाय, यदि कोई आवश्यकता हो, अपराध के विशेष प्रकार के संबंध में ऐसे किसी निवारक के लिए। ये ऐसे कारक हैं जिन्हें न्यायालय द्वारा समुचित दंड का विनिश्चय करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसलिए, विधानमंडल ने महसूस किया कि इस प्रयोजन के लिए, दो-सिद्धि के पश्चात् एक अलग प्रक्रम उपलब्ध कराया जाना चाहिए जब न्यायालय दंडादेश से संबंधित इन कारकों के संबंध में अभियुक्त की सुनवाई कर सके और फिर अभियुक्त को उचित दंड दे सके।

4.दंडादेश के प्रश्न पर सुनवाई को सभी अर्थ और सामग्री से मुक्त कर दिया जाएगा और यह एक निष्क्रिय औपचारिकता बन जाएगी, अगर इसे केवल दंडादेश के प्रश्न से संबंधित विभिन्न कारकों के संबंध में सामग्री प्रस्तुत करने के लिए और यदि

आवश्यक हो तो ऐसी सामग्री को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने के प्रयोजन के लिए साक्ष्य प्रस्तुत के लिए पक्षकारों और विशेष रूप से अभियुक्त को बिना किसी अवसर दिए मौखिक प्रस्तुतियों को सुनने तक सीमित कर दिया जाए।

21. **सांता सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में न्यायमूर्ति भगवती ने मृत्यु दंडादेश को अपास्त कर दिया और संता सिंह (पूर्वोक्त) में यथा निर्वचन के अनुसार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के उपबंधों के अनुसार दंडादेश के प्रश्न के संबंध में याची को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् समुचित दंडादेश पारित करने के निदेश के साथ मामले को सेशन न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया।

22 **दगडू और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य** वाले मामले में इस न्यायालय की न्यायाधीश पीठ ने **सांता सिंह** (ऊपर) का उल्लेख किया और कहा कि द 0 प 0 से 0 की धारा 235 (2) के आदेश का अक्षरशः पालन किया जाना चाहिए। चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति ने अभिनिर्धारित किया:-

“79..... अदालत को, किसी आरोपी को दोषी ठहराने पर, उसे सजा के सवाल पर निर्विवाद रूप से सुनना चाहिए। किंतु यदि किसी कारण से यह ऐसा करने से छूट जाता है और अभियुक्त उच्च न्यायालय में इसकी शिकायत करता है तो वह न्यायालय दंडादेश के प्रश्न पर अभियुक्त को सुनवाई करके भंग का उपचार करने के लिए स्वतंत्र होगा। वह अवसर वास्तविक और प्रभावी होना चाहिए, जिसका अर्थ है कि अभियुक्त को वे सभी आंकड़े न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुमति दी जानी चाहिए जो वह दंडादेश के प्रश्न पर प्रस्तुत करना चाहता है। अभियुक्त अपने वकील को न्यायालय में मौखिक निवेदन करने का निर्देश देकर या न्यायालय के समक्ष शपथपत्र पर या अन्यथा जो कुछ वह दंडादेश के प्रश्न पर उसके समक्ष रखना चाहता है उसे लिखित रूप में प्रस्तुत करके उस अधिकार का प्रयोग कर सकता है।

न्यायालय, समुचित मामलों में, मामले को स्थगित कर सकता है ताकि अभियुक्त को आवश्यक आंकड़े प्रस्तुत करने के लिए और दंडादेश के प्रश्न पर अपनी दलीलें देने के लिए पर्याप्त समय दिया जा सके। यह, शायद, अनिवार्य रूप से वहां होना चाहिए जहां पहली बार किसी उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि अभिलिखित की गई हो।"

23. **माछी सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य** वाले मामले में, इस न्यायालय ने निर्णय दिया:

"38.(iv) गंभीर और कम करने वाली परिस्थितियों का एक आर्थिक चिट्ठा तैयार करना होगा और ऐसा करते समय कम करने वाली परिस्थितियों को पूरा महत्व देना होगा और विकल्प का उपयोग करने से पहले गंभीर और कम करने वाली परिस्थितियों के बीच एक उचित संतुलन बनाना होगा।"

24. संतोष कुमार **सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य** वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया और अभिनिर्धारित किया:-

"157. आनुपातिकता का सिद्धांत, जो ऐसा आधार प्रतीत होता है जिस पर विद्वत विचारण न्यायाधीश और उच्च न्यायालय ने भी इसमें अपीलार्थी को मृत्युदंड देने के लिए अपनी आधारशिला रखी, मृत्युदंड देने के लिए न्यायोचित तर्क का उपबंध करता है। तथापि, अभियुक्त पर कोई दंड अधिरोपित करते समय न्यायालय को पुनर्वास के सिद्धांत को भी ध्यान में रखना चाहिए। संहिता की धारा 354 (3) पर विचार करते हुए, यह विशेष रूप से उन मामलों में ऐसा है जहां न्यायालय को यह अवधारित करना है कि क्या मामला दुर्लभ से दुर्लभ मामले के अन्तर्गत आता है।

158. हमारी राय में, निचले न्यायालयों द्वारा दिए गए कारण बचन सिंह परीक्षण को संतुष्ट नहीं करते हैं। संहिता की धारा 354 (3) में अपवाद का प्रावधान है। इसलिए, आनुपातिकता के सिद्धांत का सामान्य नियम लागू नहीं होगा। हमें भारत के

संविधान के अनुच्छेद 21 के आलोक में उक्त प्रावधान को अवश्य पढ़ना चाहिए। बचन सिंह और माछी सिंह द्वारा संहिता की धारा 354 (3) का निर्वचन करते हुए अधिकथित विधि को हमारी संवैधानिक योजना का भाग माना जाना चाहिए।

159. यद्यपि बचन सिंह वाले मामले में उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक न्यायपीठ के निर्णय में यह अवधारित करने के लिए कोई मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित नहीं किए गए कि कौन से मामले विरले मामलों में से विरलतम प्रवर्ग के अंतर्गत आते हैं, फिर भी निर्णय में सूचीबद्ध और उसका समर्थन करने वाली शमन करने वाली परिस्थितियां सुधार और पुनर्वास को अत्यधिक महत्व देती हैं, यहां तक कि राज्य से यह साबित करने की अपेक्षा करती हैं कि यह न्यायालय द्वारा मृत्युदण्ड का अधिनिर्णय दिए जाने के पूर्व एक पूर्व शर्त के रूप में संभव नहीं होगा। इसलिए हम केवल आनुपातिकता के आधार पर दंड का निर्धारण नहीं कर सकते। हमारे सामने ऐसा कुछ भी नहीं है जो दर्शाता है कि अपीलकर्ता सुधार और पुनर्वास नहीं कर सकता है।

162. इसके अतिरिक्त, निर्विवाद रूप से, मृतक के मृत शरीर के निपटान की रीति और पद्धति घृणित थी और वर्तमान मामले को हत्या का सबसे घृणित और घृणित मामला बनाने में एक लंबा रास्ता तय करती है। तथापि, हमारी यह राय है कि किसी मृत शरीर के निपटान का मात्र तरीका मृत्युदंड के अधिरोपण के प्रयोजन के लिए किसी मामले को 'विरले मामलों में से विरलतम' प्रवर्ग में सम्मिलित करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। इस पर कई अन्य कारकों के साथ विचार किया जा सकता है।

25. अजय पंडित और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य वाले मामले में।

“47. इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया: मृत्युदंड एक अपवाद है, नियम नहीं, और केवल दुर्लभ से दुर्लभ मामलों में, अदालत मौत की सजा सुना सकती है। मृत्युदंड की प्रतीक्षा करने वाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति और आजीवन कारावास से दंडित किए गए व्यक्ति की मानसिक स्थिति मानसिक और मनोवैज्ञानिक रूप से समान नहीं हो सकती है। अदालत का यह कर्तव्य और दायित्व है कि वह प्रासंगिक तथ्यों को सामने लाए, भले ही आरोपी ने ऐसी स्थितियों में पूरी तरह से चुप्पी साध रखी हो। वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने आरोपी से पूछताछ करते समय उन प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए इस मुद्दे को सही परिप्रेक्ष्य में संबोधित नहीं किया है और इसलिए, द0प0स0 की धारा 235 (2) के पीछे के उद्देश्य और उद्देश्य को ठीक से आत्मसात करने और समझने में प्रक्रिया की एक गंभीर त्रुटि की है।”

26. मोहिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया:-

"22. 'विरले मामलों में विरले' के सिद्धांत के दो पहलू हैं और जब दोनों पहलुओं का समाधान हो जाता है तभी मृत्युदंड अधिरोपित किया जा सकता है। पहला, मामला स्पष्ट रूप से 'दुर्लभ से दुर्लभतम' की परिधि के भीतर आना चाहिए और दूसरा, जब वैकल्पिक विकल्प को निर्विवाद रूप से प्रतिबंधित कर दिया जाए। बचन सिंह ने अंतिम उपाय के रूप में मृत्युदंड के चयन का सुझाव दिया जब आजीवन कारावास का वैकल्पिक दंड निरर्थक होगा और कोई प्रयोजन पूरा नहीं करेगा।

23. आजीवन कारावास में, विभिन्न स्तरों पर निवारण, पुनर्वास और प्रतिशोध प्राप्त करने की संभावना है। लेकिन मौत की सजा के मामले में ऐसा नहीं है। यह पुनर्वास और सुधार के लिए दोषी की क्षमता को पूरी तरह से अस्वीकार करने में अद्वितीय

है। यह जीवन को समाप्त कर देता है और इस प्रकार अस्तित्व को समाप्त कर देता है, इसलिए जीवन से संबंधित किसी भी चीज को समाप्त कर देता है। यह दो दंडों के बीच एक बड़ा अंतर है। इस प्रकार, मृत्युदंड अधिरोपित करने से पूर्व, इस पर विचार करना अनिवार्य है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, "विरले मामलों में से विरलतम" उक्ति मृत्युदंड और आजीवन कारावास के वैकल्पिक दंड के बीच इस अंतर के संकेत देती है। यहां प्रासंगिक सवाल यह निर्धारित करना होगा कि क्या सजा के रूप में आजीवन कारावास निरर्थक होगा और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में कोई कारण नहीं होगा। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, आजीवन कारावास को पूरी तरह से निरर्थक कहा जा सकता है, केवल तभी जब सुधार का दंडादेश देने का उद्देश्य अप्राप्य कहा जा सकता है। इसलिए, दुर्लभ से दुर्लभ सिद्धांत के दूसरे पहलू को संतुष्ट करने के लिए, अदालत को स्पष्ट सबूत देना होगा कि क्यों दोषी किसी भी प्रकार की सुधारक और पुनर्वास योजना के लिए योग्य नहीं है।"

27. पंछी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, में इस न्यायालय ने

"20.यह देखा "इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस मामले में, विशेष रूप से बुजुर्गों और कम उम्र के बच्चों की हत्याओं में क्रूरता का बोलबाला है। यह हो सकता है कि जिस तरह से हत्याएं की गईं, वह अपने आप में कोई हल्का पक्ष न दिखाए, लेकिन यह इन हत्याओं में बहुत अजीब या बहुत विशेष नहीं है। जिस तरीके से हत्या की गई वह एक आधार हो सकता है लेकिन यह तय करने के लिए एकमात्र मानदंड नहीं है कि क्या मामला 'दुर्लभ से दुर्लभ मामलों' में से एक है, जैसा कि बचन सिंह मामले में इंगित किया गया है।"

28. मुकेश और अन्य बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) और अन्य में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस न्यायालय के पहले के निर्णयों को ऊपर

संदर्भित किया और दंडादेश को कम करने के लिए अभिलेख पर कम करने वाली परिस्थितियों को लाने के लिए अभियुक्त को शपथपत्र दाखिल करने का अवसर देने को उचित माना।

29. **हरु घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य** वाले मामले में, इस न्यायालय ने दो असहाय व्यक्तियों की बिना उनकी गलती के नृशंस हत्या के मामले में मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास की सजा में संपरिवर्तित किया। तथापि, मृत्युदंड को लघुकृत करते समय इस न्यायालय ने निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखा:-

- i. अभियुक्त की ओर से कोई पूर्व-मध्यस्थता नहीं की गई थी;
- ii. यह कार्य एकाएक किया गया।
- iii. आरोपी के पास कोई हथियार नहीं था
- iv. यह अज्ञात है कि आरोपी किन परिस्थितियों में मृतक के घर में घुसा था और किस बात ने उसे लड़के पर हमला करने के लिए प्रेरित किया।
- v. जिस क्रूर तरीके से हत्या की गई वह मार्गदर्शक कारक नहीं हो सकता और अभियुक्त के स्वयं दो नाबालिग बच्चे थे।

30. **हरु घोष** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया, ".....जिस क्रूर तरीके से हत्या की गई थी और मृतक के शरीर के अंगों को अलग करने में अभियुक्त की ओर से बाद में की गई कार्रवाई अपने आप में मृत्यु दंड के पक्ष में मार्गदर्शक कारक नहीं बनती है।"

31. **लेहना बनाम हरियाणा राज्य** वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त की मानसिक स्थिति, जिसके कारण हमला

हुआ, को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, हालांकि यह निर्णय देने के लिए प्रासंगिक नहीं हो सकता है सजा के प्रश्न पर विचार करते समय यह निश्चित रूप से एक कारक है।

32. उपर्युक्त मामले में, भले ही अपराध के कारण तीन लोगों की जान चली गई थी, इस न्यायालय ने मृत्युदंड को आजीवन कारावास में लघुकृत करके दंड को संशोधित किया, यह देखते हुए कि अपराध करने के लिए किसी शैतानी योजना का कोई सबूत नहीं था, यद्यपि कार्य क्रूर था।

33. आवेदक की ओर से पेश हुए विद्वत् वकील ने प्रस्तुत किया कि 28.2.2004 को उसकी गिरफ्तारी के बाद से आवेदक ने बिहार के भागलपुर जेल में उच्च सुरक्षा वाले एकल सेल में लगभग 15 साल की हिरासत और 11 साल की सजा-ए-मौत भोगी है।

34 **शत्रुघ्न चौहान और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य** वाले मामले में। इस न्यायालय ने यू. पी. जेल मैनुअल के सुसंगत उपबंधों और अन्य जेल मैनुअल के समान उपबंधों के प्रति निर्देश पर, मृत्युदंड प्राप्त अपराधियों की मानसिक विकार विकसित करने की संभावना पर विचार किया और चर्चा की। इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया:

"86. उपर्युक्त सामग्री, विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन के निर्देशों, जिनमें भारत एक पक्षकार है, से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि पागलपन/मानसिक बीमारी/सिजोफ्रेनिया एक महत्वपूर्ण पर्यवेक्षण परिस्थिति है, जिस पर इस न्यायालय द्वारा यह विनिश्चय करने में विचार किया जाना चाहिए कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में बदला जा सकता है या नहीं। स्पष्ट रूप से कहें तो पागलपन इस न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के लिए एक प्रासंगिक पर्यवेक्षण कारक है। 87. इसके अतिरिक्त, यह स्थापित हो जाने के पश्चात् कि मृत्यु सिद्धदोषी उन्मादी है और यह सक्षम चिकित्सक द्वारा सम्यक रूप से प्रमाणित है, निःसंदेह अनुच्छेद 21 उसका संरक्षण करता है और ऐसे व्यक्ति को

उसकी मानसिक समस्याओं के बारे में सक्षम प्राधिकारी से अतिरिक्त स्पष्टीकरण के बिना फांसी नहीं दी जा सकती। विभिन्न देशों की टिप्पणियों पर भरोसा करके भी यह उजागर किया गया है कि सभ्य देशों ने एक पागल व्यक्ति को मृत्युदंड नहीं दिया है। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों क्षेत्रों में सुस्थापित कानूनों को ध्यान में रखते हुए, हम पागलपन को पर्यवेक्षण परिस्थितियों में से एक के रूप में मानने के लिए प्रवृत्त हैं जो मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में लघुकृत करने के लिए आवश्यक है।"

35. **शत्रुघ्न चौहान** (पूर्वोक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय ने **सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य** वाले मामले को भी निर्दिष्ट किया और दोहराया। यदि एकांत कारावास अवैध था, तो एक ही सजा को अलग नाम देकर कानूनी प्रणाली में नहीं बदला जा सकता था। यदि किसी मृत्युदंड के सिद्धदोषी का लंबे समय तक एकांत परिरोध मृत्युदंड के लघुकरण का एक आधार है, तो उच्च सुरक्षा के आधार पर या अन्यथा एकांत परिरोध भी मृत्युदंड के लघुकरण का एक आधार होगा।

36. वकील ने आगे प्रस्तुत किया कि निचली अदालत ने याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया है और केवल अपराध की अमानवीय और क्रूर प्रकृति को ध्यान में रखते हुए उसे मौत की सजा सुनाई है। आपराधिक पृष्ठभूमि के संबंध में निचली अदालत के निष्कर्ष किसी भी अकाट्य सामग्री पर आधारित नहीं हैं। निचली अदालत ने केवल लोक अभियोजक के इस कथन को अभिलिखित किया कि याचिकाकर्ता पर एक अन्य विचारण में आरोप लगाया गया था जिसमें याची ने समझौते की आड़ में अपनी रिहाई का प्रबंधन किया था" (पैरा 29)।

37. **बिरजू बनाम मध्य प्रदेश राज्य** वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का हवाला देते हुए अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया और सही रूप से कहा कि केवल उन्हीं

दोषसिद्धिओं पर गंभीर परिस्थितियों के रूप में विचार किया जा सकता है जिन्होंने अंतिम रूप प्राप्त कर लिया है।

38. वकील ने प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता (द0प0सं0) की धारा 235 (2) के तहत दंडादेश के प्रश्न पर अभियुक्त को सुनने के कर्तव्य के बावजूद याचिकाकर्ता को कम करने वाली परिस्थितियों को दिखाने का अवसर नहीं दिया।

39. जैसा कि याची की ओर से उपस्थित विद्वत् वकील द्वारा तर्क दिया गया था, अभियुक्त को दंडादेश के प्रश्न पर विचार करने के चरण सहित सभी चरणों में विधिक सहायता उपलब्ध कराने का अधिकार था। याची की दोषसिद्धि के बाद, उसे उसका मार्गदर्शन और परामर्श करने के लिए और दंडादेश के प्रश्न पर एक प्रभावी सुनवाई प्राप्त करने में उसकी सहायता करने के लिए एक सामाजिक कार्यकर्ता के साथ होने का लाभ दिया जाना चाहिए था।

40. इस मामले में, याचिकाकर्ता के साथ एक सामाजिक कार्यकर्ता नहीं था। इसके अलावा, याचिकाकर्ता को प्रदान की गई कानूनी सहायता अपर्याप्त थी। आवेदक का प्रतिनिधित्व करने वाले कानूनी सहायता वकील ने दोषसिद्धि के विरुद्ध तर्क दिया, लेकिन मृत्यु के स्थान पर आजीवन कारावास के दंडादेश के अधिरोपण के लिए कम करने वाली परिस्थितियों की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित करने का अवसर नहीं चाहा। उन्होंने केवल यह कहा कि याचिकाकर्ता को गलत तरीके से फंसाया गया है।

41. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के अधीन प्रभावी सुनवाई के लिए, यह सुझाव कि न्यायालय का आशय अभियुक्त को मृत्युदंड अधिरोपित करना है, विनिर्दिष्ट रूप से दिया जाना चाहिए जिससे कि अभियुक्त न्यायालय के समक्ष कम करने वाली परिस्थितियों को रखकर मृत्युदंड के विरुद्ध प्रभावी अभ्यावेदन कर सके। ऐसा नहीं किया गया है। निचली अदालत ने प्रासंगिक तथ्यों को प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया न ही

ट्रायल कोर्ट ने याचिकाकर्ता को अभिलेख में कमी लाने वाले कारकों पर हलफनामा दायर करने का अवसर दिया। इस प्रकार याचिकाकर्ता को एक प्रभावी सुनवाई से इंकार कर दिया गया है।

42. इस न्यायालय की उक्ति के विपरीत, अन्य बातों के साथ-साथ, **दागदु** (उपर्युक्त) और **सांता सिंह** (उपर्युक्त) में याचिकाकर्ता को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के तहत दंडादेश के प्रश्न पर वास्तविक, प्रभावी और सार्थक सुनवाई नहीं की गई।

43. अभिलेखों से पता चलता है कि 29.5.2007 को निर्णय और दोषसिद्धि का आदेश सुनाए जाने के बाद, मामले को 31.5.2007 को सुनवाई के लिए प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था। तथापि, उसी दिन अर्थात् २९. ०५. २००७ को ही याची को जेल अभिरक्षा से पेश किया गया और मृत्यु दंड अधिरोपित किया गया। मृत्युदंड अधिरोपित करने वाला आदेश सुविधा के लिए यहां नीचे उद्धृत किया गया है:-

“26. दोषी मोहम्मद मन्नान उर्फ अब्दुल मन्नान को जेल की हिरासत से पेश किया गया।

27. विद्वान लोक अभियोजक और सिद्धदोष के विरुद्ध दंडादेश पारित करने के मुद्दे पर सिद्धदोष के लिए विद्वत वकील सुना।

28. दोषी के विद्वत वकील ने अपनी दलील में फिर दोहराया है कि दोषी को इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

29. दूसरी ओर, विद्वान लोक अभियोजक ने दृढ़ता से इस बात पर जोर दिया है कि उसके विरुद्ध विरचित आरोपों के संबंध में सिद्धदोषी का दोष सभी युक्तियुक्त शंकाओं की छाया से परे साबित हुआ है, जिसे केवल बर्बर कृत्य और पूरे समाज के विरुद्ध अपराध के रूप में कल्पना से परे माना जा सकता है। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि दोषी एक अन्य एस. टी. नं. 172/93 में अभियुक्त था, जिसका विद्वत

जिला और सत्र न्यायाधीश, दरभंगा की अदालत द्वारा 18.9.1993 को निपटान किया गया था, जिसमें दोषी ने समझौते की आड़ में अपनी रिहाई का प्रबंधन किया था। इस मामले में दोषी के खिलाफ अधिकतम सजा देने के लिए विद्वान लोक अभियोजक द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है।

30. संबंधित पक्षों के कथन और सिद्धदोषी के विरुद्ध आरोपों की प्रकृति पर विचार करने पर मैं पाता हूं कि सिद्धदोषी का अपराध न केवल जघन्य और बर्बर है बल्कि सामान्य रूप से समाज के विरुद्ध अपराध है। दोषी को अपहरण के बाद नृशंस और पूर्व नियोजित तरीके से एक नाबालिग लड़की के बलात्कार और हत्या का दोषी पाया गया है, जिसे केवल अमानवीय और क्रूर कृत्य माना जा सकता है।

31. कानून का उद्देश्य दोषी के खिलाफ अधिकतम सजा देकर पूरा किया जाएगा। अतः दोष-सिद्ध मोहम्मद मन्नान उर्फ अब्दुल मन्नान को भारतीय दंड संहिता की धारा 366 ए के अधीन आरोप के लिए 10 वर्ष के लिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 376 और भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन आरोप के लिए सात वर्ष के लिए आजीवन कारावास का दंडादेश दिया जाता है और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप के लिए मृत्युदंड के सिवाय सभी दंडादेश समवर्ती रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप के लिए मृत्युदंड के निष्पादन तक चलेंगे जिसके द्वारा दोषी को उसकी मृत्यु तक गर्दन द्वारा फांसी दी जाएगी।

32. इस मामले की पूरी कार्यवाही मृत्युदंड की पुष्टि के लिए माननीय उच्च न्यायालय, पटना को प्रेषित की जाए।"

44. सजा के आदेश के अवलोकन पर, यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वत वकील ने केवल प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता को मामले में झूठा फंसाया गया था। उन्होंने सजा के संबंध में कोई निवेदन नहीं किया। उन्होंने खुद को

तैयार करने के लिए और समय नहीं मांगा, हालांकि इसमें एक दोषी के जीवन और मृत्यु का सवाल शामिल था। निचली अदालत ने विद्वत लोक अभियोजक के इस कथन के आधार पर कार्यवाही की कि आरोप युक्तियुक्त संदेह से परे साबित किए गए थे।

45. निचली अदालत ने पाया कि किया गया अपराध बर्बर था और समाज के खिलाफ किया गया अपराध कल्पना से परे था। सवाल यह है कि क्या मृत्युदंड लगाया जाना चाहिए था।

46. विचारण न्यायालय प्रत्यक्षतः विद्वत लोक अभियोजक की इस प्रस्तुति से प्रभावित हुआ है कि दोषी, अर्थात् याचिकाकर्ता, एक अन्य सेशन ट्रायल एसटी नं. 172/93 में अभियुक्त था जिसका निपटान विद्वत जिला और सत्र न्यायाधीश, दरभंगा के न्यायालय द्वारा 18.9.1993 को किया गया था। "ट्रायल कोर्ट ने टिप्पणी की कि" "दोषी ने समझौते की आड़ में अपनी रिहाई का प्रबंधन किया। "

47. विचारण न्यायालय ने स्पष्ट रूप से 18 सितम्बर, 1993 को दरभंगा के जिला और सत्र न्यायाधीश के न्यायालय द्वारा पारित 18 सितम्बर, 1993 के आदेश का अवलोकन नहीं किया है। याची को एक न्यायालय द्वारा बरी किए जाने के बाद, विचारण न्यायालय को विद्वत लोक अभियोजक की इस अप्रमाणित प्रस्तुति से प्रभावित नहीं होना चाहिए था कि दोषी ने उसकी रिहाई का प्रबंधन किया था।

48. विचारण न्यायालय ने दोषी अर्थात् याचिकाकर्ता का दोष न केवल जघन्य और बर्बर पाया, बल्कि सामान्य रूप से समाज के खिलाफ अपराध था, क्योंकि उसे एक नाबालिग लड़की के बलात्कार और हत्या का दोषी पाया गया था, जो उसके अपहरण के बाद एक वीभत्स और सुविचारित तरीके से किया गया था, जिसे केवल अमानवीय और क्रूर कहा जा सकता है।

49. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि 8 वर्ष की बालिका के साथ बलात्कार और हत्या से अन्तःकरण को आघात पहुंचता है। यह बर्बर है। हालांकि, इस बात का कोई सबूत नहीं है कि हत्या पूर्व नियोजित थी। याचिकाकर्ता के पास कोई हथियार नहीं था। इसके अलावा, विचारण न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इस सवाल पर विचार नहीं किया गया है कि क्या अपराध दुर्लभ अपराधों में से सबसे दुर्लभ अपराध है, जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने बचन सिंह(ऊपर) में आदेश दिया है।

50. मृत्युदंड की चरम सीमा की पुष्टिकरण के लिए उच्च न्यायालय का तर्क सुविधा के लिए यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

“26. निचली अदालत ने अपीलार्थियों की आपराधिक पृष्ठभूमि के संबंध में प्रस्तुतियों के आधार पर और इस निष्कर्ष पर कि अपराध न केवल जघन्य और बर्बर है, बल्कि सामान्य रूप से समाज के खिलाफ अपराध है, अपीलार्थी को मृत्युदंड का चरम दंड दिया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलार्थी के आपराधिक पूर्ववृत्त पर निचली अदालत द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिए था और इसलिए मृत्यु दंड देने के लिए निचली अदालत द्वारा दिए गए विशेष कारणों को कानून में दूषित किया गया है।

27. मैंने यह तय करने के लिए कि क्या अपीलार्थी को दी गई मौत की सजा की पुष्टि की जानी चाहिए या नहीं, पूरे तथ्यों और पूर्वोक्त प्रस्तुतियों पर विचार किया है। इस संबंध में यह देखा गया है कि अपीलकर्ता लगभग 42-43 वर्ष की आयु का एक परिपक्व व्यक्ति है। उन्होंने लगभग 7 वर्ष की एक लड़की के बलात्कार और हत्या का जघन्य और बर्बर अपराध किया है, जो पतली और 4 'ऊंचाई की थी। ऐसा बच्चा सामान्य स्थिति में वासना जगाने में असमर्थ था। उसका योजनाबद्ध तरीके से अपहरण किया गया था क्योंकि वह निर्दोष थी और अपीलकर्ता की योजना को समझ नहीं पाई थी। वह एक पेशाचिक मध्यम आयु के व्यक्ति की असहाय शिकार हो गई,

जिस पर बच्चा एक बड़े व्यक्ति के रूप में भरोसा कर सकता था। चिकित्सा साक्ष्य बलात्कार के समय बच्चे के चेहरे, नाखूनों और शरीर पर चोट पहुंचाने के क्रूर तरीके को दर्शाता है, जिसके बाद हत्या की गई। यह सब पूर्व नियोजित था जैसा कि एक सुनसान स्थान के अपहरण और चयन के तरीके से स्पष्ट है जहां अपराध किया गया था और शरीर को छिपाया गया था। एक बाल लड़की के खिलाफ इस तरह का अपराध निश्चित रूप से समाज के खिलाफ एक अपराध है। मामले के तथ्य, पीड़ित की उम्र और अपीलकर्ता की उम्र के साथ लिए गए अपराध स्पष्ट रूप से मामले को 'दुर्लभ से दुर्लभ मामलों' की श्रेणी में लाते हैं जिसमें न्याय के हित में अधिकतम दंड दिए जाने की आवश्यकता होती है। ऐसे मामले में कम दंड देना उचित और पर्याप्त नहीं होगा। इसलिए अपीलार्थी के आपराधिक पूर्ववृत्त के संबंध में सामग्री की उपेक्षा करने के बाद भी, मेरा विचार है कि अपीलार्थी मृत्यु के चरम दंड का हकदार है। इसलिए, निचली अदालत द्वारा अपीलार्थी को दी गई मौत की सजा की पुष्टि की जाती है और संदर्भ का सकारात्मक जवाब दिया जाता है। अपीलकर्ता की अपील खारिज की जाती है।"

51. जैसा कि याची की ओर से उपस्थित विद्वत् वकील द्वारा तर्क दिया गया था, उच्च न्यायालय ने अपराध की प्रकृति और पीड़ित की आयु को ध्यान में रखते हुए, अपराध को दुर्लभ से दुर्लभ मामलों की श्रेणी में पाया। इस तथ्य को कि किसी भी आपराधिक घटना को रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया था, आकस्मिक रूप से अप्रासंगिक बताते हुए दरकिनार कर दिया गया है।

52. वकील ने प्रस्तुत किया और उचित रूप से कि उच्च न्यायालय यह समझने में विफल रहा कि विचारण न्यायालय ने इस आधार पर कार्यवाही करके कि याचिकाकर्ता का आपराधिक इतिहास था, जब उसे बरी कर दिया गया था, मृत्युदंड देने में कानून में गलती की थी।

53. उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी के आपराधिक पूर्ववृत्त से संबंधित सामग्री की उपेक्षा करने के बावजूद यह निष्कर्ष निकालकर कि सिद्धदोषी 'मृत्युदंड का हकदार' है, मृत्युदंड को कायम रखा। उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार नहीं किया है। इस न्यायालय ने अपराध की क्रूरता और कठोरता और पीड़ित की उम्र को ध्यान में रखते हुए मौत की सजा की पुष्टि की और राय बनाई कि याचिकाकर्ता समाज के लिए एक खतरा था और आगे भी रहेगा.उसमें सुधार नहीं किया जा सकता था।

54. वकील ने प्रस्तुत किया कि अपराध की क्रूरता और पीड़िता की आयु मृत्यु दंडादेश देने के लिए पर्याप्त आधार नहीं थी। इसके अलावा, इस न्यायालय की यह राय कि याचिकाकर्ता समाज के लिए एक खतरा होगा और उसमें सुधार नहीं किया जा सकता, कोई आधार नहीं था.विद्वत् वकील ने प्रस्तुत किया कि याची को दोषपूर्ण जांच के आधार पर परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर दोषी ठहराया गया था।

55. अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि भले ही डॉ. पी. के. दास (चौथा अभियोजन साक्षी) ने पीड़ित के योनि स्वैब का संग्रह किया था, जो परीक्षण से पता चला कि कुछ स्पर्मेटोजोआ अक्षुण्ण थे, डीएनए विश्लेषण नहीं किया गया था या अभियोजन द्वारा संचालित किए जाने की मांग की गई थी जिसके लिए प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकता है। उपर्युक्त प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, वकील ने **कालू खान बनाम् राजस्थान राज्य और संतोष कुमार** (ऊपर) पर भरोसा किया।

56. डीएनए विश्लेषण करने में अभियोजन पक्ष की चूक के बावजूद विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त साक्ष्य पाया होगा। इसके अलावा, जैसा कि काउंसेल द्वारा उचित रूप से तर्क दिया गया है, साक्ष्य की गुणवत्ता सजा देने के लिए प्रासंगिक कारक है।

57. **रमेश और अन्य बनाम् राजस्थान राज्य** में, इस न्यायालय ने अवलोकन और अभिनिर्धारित किया गया:

"68. व्यावहारिक रूप से संतोष कुमार वाले मामले में मृत्यु दंडादेश संबंधी संपूर्ण विधि का निर्देश किया गया था। पैरा 56 में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया: (एससीसी पृष्ठ 527)

56.अदालत को इस स्तर पर सभी प्रासंगिक जानकारी रिकॉर्ड करने के लिए एक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। अपराध से संबंधित कुछ सूचनाएं सजा सुनाए जाने से पहले के चरण से निकाली जा सकती हैं। इस जानकारी में अपराध की प्रकृति, उद्देश्य और प्रभाव, दोषी व्यक्ति की दोषसिद्धि आदि से संबंधित पहलू शामिल होंगे। उदाहरण के लिए, पारिस्थितिक साक्ष्य या बाल साक्षी पर निर्भरता का विस्तार दंडात्मक विश्लेषण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किंतु अधिकांश मृत्युदंड के मामलों में, अपराधी की विशेषताओं और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से संबंधित जानकारी की घोर कमी है। यह मुद्दा विधि आयोग की 48 वीं रिपोर्ट में भी उठाया गया था।"

58. **रामदेव प्रसाद बनाम् बिहार राज्य** में, इस न्यायालय ने इस न्यायालय के पहले के निर्णयों पर भरोसा किया **संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार** (ऊपर) और **रमेश और अन्य** (उपर्युक्त) में इस न्यायालय के पहले के निर्णयों को संदर्भित किया और उन पर भरोसा किया और इस बात की पुष्टि की कि मृत्युदंड के प्रश्न पर विचार करने के लिए साक्ष्य की गुणवत्ता भी एक सुसंगत कारक था। उपर्युक्त मामले में, इस न्यायालय ने चार वर्ष की बच्ची के बलात्कार और हत्या के लिए दी गई मौत की सजा की पुष्टि करना असुरक्षित महसूस किया।

59. इस मामले में, याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि पारिस्थितिक साक्ष्य और जांच के दौरान याचिकाकर्ता द्वारा पुलिस को दी गई कथित न्यायेतर स्वीकारोक्ति पर आधारित है, जिसके आधार पर कुछ वसूलियां की गई थीं। याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई फॉरेंसिक सबूत नहीं है। हमारे विचार में, याचिकाकर्ता पर मृत्युदंड के अधिरोपण को बनाए रखना असुरक्षित होगा।

60. **सुशील शर्मा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)** वाले मामले में इस न्यायालय ने मामले के विशिष्ट तथ्यों पर विचार किया और मृत्युदंड नहीं दिया क्योंकि एकमात्र साक्ष्य पारिस्थितिक था और कुछ ऐसे कारक थे जो अपीलार्थी के लाभ के लिए थे। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया:

"101. हम उपरोक्त निर्णयों से देखते हैं कि हत्या की क्रूरता या मारे गए व्यक्तियों की संख्या या शरीर का निपटान करने का तरीका हमेशा इस न्यायालय को मृत्युदंड अधिरोपित करने के लिए प्रेरित नहीं करता है। इसी प्रकार, कभी-कभी, विशिष्ट तथ्यात्मक मैट्रिक्स में, इस न्यायालय ने ऐसे मामलों में, जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य या केवल सरकारी गवाह के साक्ष्य पर आधारित हों, मृत्युदंड देना उचित नहीं समझा है।"

61. **कालू खान (पूर्वोक्त) में**, इस न्यायालय ने **स्वामी श्रद्धानंद (2) @ मुरली मनोहर मिश्रा बनाम कर्नाटक राज्य** में अपने पूर्व के निर्णय का उल्लेख किया और मामले के तथ्यों में, परिस्थितियों के संतुलन ने 'सदोष कलन' में एक अनिश्चितता का परिचय दिया और इसलिए मृत्यु दंड के अधिरोपण का एक विकल्प था। तदनुसार, सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया गया।

62. **संतोष कुमार (पूर्वोक्त)** वाले मामले में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि जबकि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में मृत्युदंड अधिनिर्णीत करने

में विधि में कोई प्रतिषेध नहीं है, किंतु उस साक्ष्य से अपवादात्मक मामले की ओर अग्रसर होना चाहिए। कहा गया था:

"167. पूरा अभियोजन मामला सरकारी गवाह के साक्ष्य पर टिका हुआ है। मृत्युदंड अधिरोपित करने के प्रयोजन के लिए, उस कारक को ध्यान में रखना होगा। हम यह मान लेंगे कि स्वामी श्रद्धानंद (20) (इस न्यायालय ने कोई ठोस कानून अधिकथित नहीं किया कि पारिस्थितिक साक्ष्य वाले मामले में मृत्युदंड अधिरोपित करना अनुज्ञेय नहीं होगा। किंतु इसके संबंध में भी जो प्रश्न उठता है वह यह होगा कि क्या किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कुछ परिकल्पना आवश्यक होगी कि अपराध किस प्रकार किया गया था जो उस मामले से भिन्न है जहां घटना की रीति की कोई भूमिका नहीं थी। यहां तक कि जहां मृत्यु का दंडादेश पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर अधिरोपित किया जाना है, वहां पारिस्थितिक साक्ष्य ऐसा होना चाहिए जो एक असाधारण मामले की ओर ले जाता है।"

63. **सेबेस्टियन @ चेविथियन बनाम केरल राज्य** वाले मामले में, इस न्यायालय ने निर्णय दिया:

"18. हमारी यह राय है कि इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में मृत्युदंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया जाना चाहिए किंतु इस न्यायालय द्वारा स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य [(2008) 13 एस. सी. सी. 767] में अधिकथित निबंधनों के अनुसार किसी व्यवस्थित समाज के सदस्य के रूप में उनका बने रहना अवांछनीय है।"

64. वकील ने अंततः प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करते हुए, कानूनी सहायता के वकील की याचिकाकर्ता के सुधार की संभावना के बारे में साक्ष्य देने की सकारात्मक जिम्मेदारी थी, जिसे उसने निर्वहन नहीं किया। सुधार संबंधी साक्ष्य अपराध की

परिस्थितियों से स्वतंत्रता होना चाहिए। इस संदर्भ में **राजेश कुमार** (ऊपर), **संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार** (ऊपर) और **लेहना** (ऊपर) पर भरोसा किया गया है।

65. वकील ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को प्रदान किया गया कानूनी प्रतिनिधित्व सभी चरणों में अप्रभावी था। 21 फरवरी, 2004 को आरोप तय करते समय निचली अदालत के समक्ष याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व वकील द्वारा नहीं किया गया था। 6. 6. 2005 को याचिकाकर्ता ने कानूनी सहायता के लिए अनुरोध किया। सजा सुनाए जाने के दौरान वकील ने कम करने वाली परिस्थितियों को रखने के लिए समय भी नहीं मांगा।

66. विद्वत वकील ने प्रस्तुत किया कि विधिक प्रतिनिधित्व न केवल विचारण न्यायालय में, बल्कि उच्च न्यायालय और इस न्यायालय के समक्ष भी अप्रभावी था। सजा के सवाल पर दोषी का बचाव करने के लिए अप्रभावी कानूनी प्रतिनिधित्व कोई कानूनी प्रतिनिधित्व नहीं है और मौत की सजा को कम करने के लिए एक आधार है। इस प्रस्ताव को **राम देव प्रसाद** (उपर्युक्त) में इस न्यायालय के निर्णय से समर्थन प्राप्त होता है।

67. विद्वत वकील ने इस न्यायालय का ध्यान इस न्यायालय के विभिन्न आदेशों की ओर आकर्षित किया है जहां इस न्यायालय ने किसी अवयस्क के बलात्कार और हत्या से संबंधित मामलों में कम करने वाली परिस्थितियों और मृत्युदंड को लघुकृत करने पर विचार किया है। दुर्भाग्यवश, वे आदेश निचली अदालत के समक्ष नहीं रखे जा सके। यदि उन आदेशों पर ध्यान दिया गया होता, तो याचिकाकर्ता को मौत की सजा नहीं दी गई होती।

68. **मुकेश और अन्य** (पूर्वोक्त) पर निर्भर करते हुए, अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह न्यायालय नीचे की अदालतों में सजा देने में खामियों को दूर करने के लिए याचिकाकर्ता के वकील द्वारा इकट्ठा किए गए हलफनामे या सामग्री को मंगा सकता है। याचिकाकर्ता के कानूनी प्रतिनिधियों ने याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के साथ साक्षात्कार किए हैं और निम्नलिखित कारकों पर विचार करने की आवश्यकता है:-

- (i) याचिकाकर्ता ने अपना पूरा जीवन गरीबी में बिताया है।
- (ii) उनकी औपचारिक शिक्षा तक कभी पहुंच नहीं रही है
- (iii) उन्होंने 15 वर्ष की आयु में काम करना शुरू किया जब उनके पिता स्ट्रोक के बाद अपने शेष जीवन के लिए अक्षम हो गए थे।
- (iv) याचिकाकर्ता का विवाह 22 वर्ष की आयु में हुआ था और उसके पांच आश्रित बच्चे हैं
- (v) याचिकाकर्ता ने अपनी पत्नी और बच्चों का भरण-पोषण करने के लिए संघर्ष किया।
- (vi) परिवार घोर गरीबी में है।

69. वकील ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता के साथ बातचीत के दौरान, वह वास्तविकता की समझ खो चुका था और काल्पनिक व्यक्तित्वों के बारे में बात कर रहा था, जिसे उसने जिन्न के रूप में वर्णित किया था। उन्होंने अपने विचारों और कार्यों पर नियंत्रण खो देने का दावा किया। वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता मानसिक अस्थिरता से पीड़ित था। इस संबंध में यह प्रस्तुत किया गया है कि:-

- (i) याचिकाकर्ता को अपने जीवन के दौरान अपने सिर में कई घातक चोटों का सामना करना पड़ा था जिससे लगातार सिरदर्द, याददाश्त का नुकसान और भटकाव हुआ है।
- (ii) याचिकाकर्ता का 1990 के आसपास दरभंगा मेडिकल कॉलेज में डेढ़ साल तक मस्तिष्क क्षय या मस्तिष्क क्षय के लिए निदान और उपचार किया गया था। दुर्भाग्य से उस समय के रिकॉर्ड का पता नहीं लगाया जा सकता है।

(iii) याचिकाकर्ता की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों ने उसकी मानसिक अस्थिरता के लिए प्रभावी उपचार का लाभ उठाना याचिकाकर्ता के लिए असंभव बना दिया।

70. एक परामर्शदाता मनोचिकित्सक, डॉ. कौस्तुभ की प्रतिलिपियां हैं जोग, जिन्होंने 29.10.2008 को यह विचार व्यक्त किया था कि “एक मजबूत संभावना है कि याचिकाकर्ता जैविक (न्यूरोलॉजिकल) और/या मानसिक स्वास्थ्य मुद्दों से पीड़ित हो सकता है” और साइकोसिस स्पेक्ट्रम और जैविक मस्तिष्क क्षति पर एक मूल्यांकन की सलाह दी जिसने उसके व्यवहार को बदल दिया हो। प्रबंध निदेशक डॉ. कौस्तुभ जोग की राय की एक प्रति तैयार कर ली गई है। डॉ. जोग स्पष्ट रूप से महाराष्ट्र मेडिकल काउंसिल के साथ पंजीकृत मनोचिकित्सक हैं, जिनके कई प्रकाशन हैं और उन्हें पुरस्कार भी मिल चुके हैं।

71. वकील प्रस्तुत करते हैं कि यदि यह न्यायालय आवेदक को अवसर देता है, तो उपरोक्त कारकों को रिकॉर्ड पर रखते हुए एक हलफनामा दायर किया जाएगा। वकील प्रस्तुत करते हैं कि दोषपूर्ण दंडात्मक प्रक्रिया के आलोक में, जैसा कि इंगित किया गया है, यह न्यायालय याचिकाकर्ता की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों और मानसिक बीमारी की चिंताओं पर और अन्य कम करने वाले कारकों पर भी विचार कर सकता है, जैसे कि रिकॉर्ड पर आपराधिक पूर्ववृत्त का अभाव, याचिकाकर्ता पर लगाए गए मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदल सकता है।

72. लगभग आठ साल पहले दायर की गई समीक्षा याचिका, जैसा कि ऊपर कहा गया था, 24.08.2011 को सर्कुलेशन द्वारा खारिज कर दी गई थी। उसके बाद भी, लगभग तीन वर्षों तक मृत्युदंड को निष्पादित नहीं किया गया था। समीक्षा को फिर से खोलने और ओपन कोर्ट में सुनवाई के लिए यह आवेदन भी चार साल से अधिक समय से लंबित है। हलफनामे मांगने से मामले में केवल विलंब होगा। याचिकाकर्ता इन सभी वर्षों के लिए वस्तुतः किसी आधार पर एकांत कारावास में रहा है, हो सकता है कि यह उसकी अपनी

सुरक्षा का आधार हो। यह न्यायालय मनोचिकित्सक, डॉ. जोग की राय पर भी न्यायिक संज्ञान ले सकता है जो यह बताता है कि याचिकाकर्ता मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं है।

73. **लहना (उपर्युक्त) शत्रुघ्न चौहान (पूर्वोक्त)** में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मानसिक बीमारी मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में लघुकृत करने की पर्यवेक्षण परिस्थितियों में से एक है। पूर्वोक्त दृष्टिकोण की पुष्टि इस न्यायालय द्वारा **नवनीत कौर बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य** में की गई थी।

74. विधि की प्रतिपादना जो ऊपर निर्दिष्ट निर्णयों से प्रकट होती है स्वयं मृत्युदंड विरले मामलों में से विरलतम के सिवाय अधिरोपित नहीं किया जा सकता है, जिसके लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354 (3) में अधिदेशित रूप में विशेष कारण लेखबद्ध किए जाने हैं। यह तय करने में कि क्या कोई मामला दुर्लभ से दुर्लभतम की श्रेणी में आता है, क्रूरता और/या अपराध की जघन्य और/या जघन्य प्रकृति एकमात्र मानदंड नहीं है। यह केवल अपराध नहीं है जिसे न्यायालय को ध्यान में रखना है, बल्कि अपराधी, उसके मन की स्थिति, उसकी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि आदि को भी ध्यान में रखना है।

75. इसलिए, मृत्युदंड का चरम सीमा का दंड अधिरोपित करने से पूर्व, न्यायालय को स्वयं को संतुष्ट करना होगा कि मृत्युदंड अनिवार्य है, अन्यथा सिद्धदोषी समाज के लिए खतरा होगा और सिद्धदोषी को सामग्री प्रस्तुत करके दंडादेश के प्रश्न पर सुनवाई का प्रभावी, सार्थक, वास्तविक अवसर देने के पश्चात् सिद्धदोषी के सुधार या पुनर्वास की कोई संभावना नहीं है।

76. दंडादेश के प्रश्न पर सुनवाई के प्रक्रम सहित प्रत्येक प्रक्रम पर सिद्धदोषी को दी जाने वाली विधिक सहायता प्रभावी होगी और यदि अभियुक्त मौन रहा है तब भी न्यायालय सुसंगत कारकों को प्रकट करने के लिए बाध्य और कर्तव्य होगा। 76. दंडादेश को कम करने के लिए कम करने वाली परिस्थितियों को अभिलेख पर लाने के लिए सिद्धदोषी को अवसर

दिया जाना चाहिए और गंभीर और कम करने वाली परिस्थितियों के बीच संतुलन बनाया जाना चाहिए।

77. जैसा कि ऊपर कहा गया है, याचिकाकर्ता को सक्षम कानूनी सहायता का लाभ नहीं मिला। विचारण न्यायालय ने भी मृत्युदंड के अधिरोपण के लिए सुसंगत सामग्री प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया। कोई हलफनामा नहीं मांगा गया। विचारण न्यायालय या अपीलीय न्यायालय ने इस सवाल का जवाब नहीं दिया कि क्या कम करनेवाली परिस्थितियाँ थीं।

78. जैसा कि ऊपर मत व्यक्त किया गया है, भले ही दंड के प्रश्न पर धारा 235 (2) के तहत सुनवाई 31.5.2007 को तय की गई थी, अर्थात्, याची के निर्णय और दोषसिद्धि के आदेश की घोषणा के दो दिन बाद, 29.5.2007 को, याचिकाकर्ता को जेल की हिरासत से पेश किए जाने और मौत की सजा दिए जाने के बाद सुनवाई की तिथि को 29.5.2007 तक अल्प कर दिया गया था।

79. निर्णय सुनाए जाने और दोषसिद्धि का आदेश दिए जाने के पश्चात् उसी दिन मृत्यु दंडादेश का अधिरोपण अपने आप में दंडादेश को दूषित नहीं कर सकता है बशर्ते कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के अधीन दंडादेश के प्रश्न पर अभिलेख में कम करने वाले कारकों को लाने के अवसर के साथ सार्थक और प्रभावी सुनवाई की जाए।

80. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 (2) के तहत सुनवाई के निचली अदालत द्वारा अल्प सूचना पर, जो कि वास्तव में, कोई नोटिस नहीं है, याचिकाकर्ता को प्रभावी सुनवाई से वंचित करता प्रतीत होता है। धारा 235 (2) के तहत सुनवाई को केवल औपचारिकता तक सीमित कर दिया गया। न्यायालय ने जल्दबाजी में उस अपराध की नृशंस प्रकृति पर विचार करते हुए, जिसके लिए याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया था, मृत्युदंड अधिरोपित करने की कार्यवाही आरंभ की।

81. इस मामले में, एक आठ वर्षीय मासूम लड़की याचिकाकर्ता की दैहिक इच्छा और वासना का शिकार हो गई। यह ज्ञात नहीं है कि क्या पीड़ित की हत्या करने के लिए याचिकाकर्ता की ओर से कोई पूर्व-ध्यान दिया गया था। यह भी ज्ञात नहीं है कि किन परिस्थितियों में उसने पीड़ित की हत्या की। यह दोषसिद्धि जांच के दौरान पुलिस के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए परिस्थितिजन्य साक्ष्य और न्यायेतर स्वीकारोक्ति पर आधारित है। "इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि अपराध घृणित है, लेकिन यह संदेह है कि क्या याचिकाकर्ता द्वारा किए गए अपराध को" "दुर्लभ से दुर्लभ" "कहा जा सकता है। "

82 यह स्थापित करने के लिए कि अपीलार्थी सुधार किए जाने में असमर्थ था, वह समाज के लिए खतरा बना रहेगा और अपराध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए केवल मृत्युदंड ही दिया जा सकता है, कोई सामग्री नहीं है।

83. केवल यह तथ्य कि याची और/या उसके वकील ने दंडादेश के प्रश्न पर मौन रहने का विकल्प चुना और विचारण न्यायालय या उच्चतर अपीलीय न्यायालयों में इसके संबंध में कोई प्रस्तुति नहीं की, याची को इस स्तर पर कम करने वाली परिस्थितियों के अस्तित्व को उठाने से वर्जित नहीं करता है, क्योंकि रचनात्मक पुनः न्याय के सिद्धांत जीवन और मृत्यु से संबंधित मामलों में लागू नहीं हो सकते हैं।

84. न्यायालय इसके लिए स्वतंत्र है कि वह या तो दंडादेश के प्रश्न को याचिकाकर्ता को सुनवाई का पर्याप्त अवसर देने के बाद मिचली अदालत को नए सिरे से विचार करने के लिए विचारण न्यायालय को भेजे या **दागदु** (उपर्युक्त) में की गई सुनवाई के द्वारा उल्लंघन का उपचार करे। लंबे समय से लंबित कार्यवाही सहित सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों पर समग्र रूप से विचार करने के बाद, हमने बाद के मार्ग को चुना है।

85. विश्व भर में यह अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है कि जेलों में विद्यमान कठिन परिस्थितियों, जैसे कि जबरन एकांतवास, अपर्याप्त स्वास्थ्य देखभाल, आजीविका की हानि

आदि के कारण कैदी अक्सर जेल में प्रवेश के बाद मानसिक बीमारी का शिकार हो जाते हैं। याचिकाकर्ता लंबे समय से कारावास से गुजर रहा है जो सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए एकांतवास है, हालांकि इसे एकांत कारावास नहीं कहा जा सकता है। इस न्यायालय ने **शत्रुघ्न चौहान** (पूर्वोक्त) के मामले में, अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशनों पर दृढ़ता से भरोसा करते हुए, 'पागलपन' को एक उपयुक्त पर्यवेक्षण कारक माना है जिसे न्यायालयों द्वारा मृत्युदंड अधिनिर्णीत करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने उसमें अभिनिर्धारित किया था कि अनुच्छेद 21 ऐसे व्यक्तियों को सक्षम प्राधिकारी से अतिरिक्त स्पष्टीकरण प्राप्त किए बिना दंडित किए जाने से बचाता है। अंत में, अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय दोनों क्षेत्रों में संचालित कानूनों पर भरोसा करते हुए, इस न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि मानसिक बीमारी एक प्रासंगिक कारक है जो मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदलने की मांग करता है।

86. यहां यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि संबंधित जेल नियम भी दोषसिद्धि के बाद मानसिक बीमारी की घटना को मान्यता देते हैं और कहते हैं कि ऐसे व्यक्तियों के दंड के निष्पादन को सरकार के आदेशों के लंबित रहने तक स्थगित कर दिया जाएगा। पूर्वोक्त विचारों की रोशनी में, हम निष्कर्ष निकालते हैं कि निष्पादन के समय याची का मानसिक स्वास्थ्य एक प्रासंगिक न्यूनीकरण कारक है जिसे वर्तमान मामले में ध्यान में रखा जाना चाहिए। जैसा कि ऊपर कहा गया है, चिकित्सा राय के रूप में अब प्रस्तुत की गई सामग्री से पता चलता है कि याचिकाकर्ता मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं है। ऊपर चर्चा किए गए कारणों से, हमारा विचार है कि याची को दिए गए मृत्यु दंड की पुष्टि करना उचित और/या सुरक्षित नहीं होगा।

87. **स्वामी श्रद्धानंद** (पूर्वोक्त) में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया:

“92. इस मामले को थोड़ा अलग दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। सजा देने के मुद्दे के दो पहलू हैं। एक दंड अत्यधिक और अनुचित रूप से कठोर हो सकता है या यह अत्यधिक अपर्याप्त हो सकता है। जब कोई अपीलार्थी विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया मृत्युदंड लेकर इस न्यायालय में आता है और उच्च न्यायालय द्वारा उसकी पुष्टि की जाती है, तो यह न्यायालय, जैसा कि वर्तमान अपील में है, यह पा सकता है कि मामला दुर्लभ से दुर्लभ प्रवर्ग से कम है और मृत्यु दंड का समर्थन करने में कुछ अनिच्छुक महसूस कर सकता है। किंतु साथ ही, अपराध की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय दृढ़ता से यह महसूस कर सकता है कि आजीवन कारावास का दंडादेश सामान्यतः 14 वर्ष की अवधि के लिए होता है, जो अत्यधिक असंगत और अपर्याप्त होगा। ऐसे में न्यायालय को क्या करना चाहिए? यदि न्यायालय का विकल्प 14 वर्ष से अनधिक के सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए केवल दो दंडों तक सीमित है, एक कारावास का दंडादेश और दूसरा मृत्यु, तो न्यायालय प्रलोभन महसूस कर सकता है और स्वयं को मृत्युदंड का समर्थन करने के लिए प्रेरित पाता है। ऐसा मार्ग सचमुच विनाशकारी होगा। इससे कहीं अधिक न्यायसंगत, युक्तियुक्त और उचित मार्ग यह होगा कि विकल्पों का विस्तार किया जाए और उन विकल्पों को अधिगृहीत किया जाए जो कानूनी रूप से न्यायालय से संबंधित हैं अर्थात् 14 वर्ष के कारावास और मृत्यु के बीच का काफी अंतराल। इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि न्यायालय मुख्य रूप से विस्तारित विकल्प का सहारा लेगा क्योंकि मामले के तथ्यों में 14 वर्ष के कारावास का दंड बिल्कुल दंड के बराबर होगा।”

88. **मुल्ला और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में, इस न्यायालय ने यह पुष्टि की कि न्यायालय को कारावास की अवधि निर्धारित करने का अधिकार है। यह विशेष रूप से उन मामलों में सच है जहां मृत्यु दंड के स्थान पर आजीवन कारावास की सजा दी गई है। इस

न्यायालय ने कहा कि न्यायालय को कारावास की अवधि निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए जो अपराध के लिए पर्याप्त होगी।"

89. यद्यपि आजीवन कारावास का अर्थ संपूर्ण आजीवन कारावास है, कैदियों को प्रायः कम से कम 14 वर्ष के कारावास के पश्चात् दंडादेश की राहत और/या माफी दी जाती है। इस मामले में, याचिकाकर्ता द्वारा किए गए अपराध की जघन्य, विद्रोही, घृणित और तिरस्कृत प्रकृति पर विचार करते हुए, हम महसूस करते हैं कि याचिकाकर्ता को अपनी प्राकृतिक मृत्यु तक आजीवन कारावास भुगतना चाहिए और उसे सजा की कोई माफी नहीं दी जानी चाहिए.

90. इसलिए, हम याचिकाकर्ता पर लगाए गए मृत्युदंड को उसकी प्राकृतिक मृत्यु तक, बिना किसी राहत या माफी के आजीवन कारावास में बदल देते हैं।

91. तदनुसार पुनर्विचार याचिका का निपटान किया जाता है।

देविका गुजराल

समीक्षा याचिका का निपटारा